UGC APPROVED JOURNAL - 47746
© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 10 | October – December 2017

भारत में ग्रामीण समाज : एक विवेचना

Sachin,
Research scholar department of History, MDU Rohtak

सार
भारतीय समाज को मुख्यतः दो भागों मे बाँटा गया है- ग्रामीण समाज तथा नगरीय समाज। प्रत्येक मनुष्य इन दोनों में से किसी एक प्रकार के समुदाय में निवास डर करता है। ग्राम और नगर मानव जीवन के दो पहलू हैं। गांवों का प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट का सम्पर्क पाया जाता है। जबकि नगरों में कृत्रिमता की प्रधानता होती है। जहाँ मानव और प्रकृति के बीच अन्तःक्रिया का रूप अधिक निकट, प्रत्यक्ष और गहन है, वह ग्राम है और जहाँ इन दोनों के बीच सम्बन्ध अप्रत्यक्ष और क्षीण है, वह नगरीय स्थिति है। इन दोनों के पर्यावरणों में पर्याप्त अन्तर है। यह पर्यावरण सम्बन्धी अन्तर ही दो भिन्न प्रकार के सामाजिक जीवन को जन्म देता है।

मुख्य बिंदु : ग्रामीण समाज, जन-जातीय समाज, कृषक समाज, जाति-व्यवस्था इत्यादि |

प्रस्तावना

खेतिहर तथा कृषक समाज की संरचना अन्य समाज से भिन्न है। कृषक समाज की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए आन्द्रे बिताई ने कहा है कि सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिये कृषक समाज शब्दावली का प्रयोग उचित नहीं है फिर भी ग्रामीण समाज के दो विभागों में कृषक समाज का ही उल्लेख अधिकांशतः मिलता है। कृषक समाज की संरचना प्रस्तुत करते हुए आन्द्र बिताई ने इसे कृषक असंतोष के लिये एक उत्तरदायी और जो एक-दूसरे से सम्पत्ति, आय और परस्पर अधिकारों तथा कर्तव्यों द्वारा बंधे होते हैं।

- **ग्रामीण भारत में जाति :**

भारत में ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति-प्रथा है। इसके साथ ही यह भारत की एक परम्परागत सामाजिक संस्था भी है तथा सामाजिक संगठन की प्रमुख विशेषता भी है। अत: इसके अध्ययन के बिना हम भारतीय सामाजिक संस्थाओं के मूलरूप को नहीं समझ सकते हैं। भारत के जाति ही व्यक्ति के कार्य, प्रस्थिति उपलब्ध अवसरों एवं असुविधाओं को तय करती है। इस संदर्भ में प्रो० एम0 देसाई का कथन है कि "भारत में जाति व्यवस्था ही अधिकांशत: एक व्यक्ति के लिये उसकी प्रस्थिति कार्यों, अवसरों और प्रतिबन्धों के रूप का निर्धारण करती है। जाति-भेद के आधार पर ही ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की प्रणालियों, व्यक्ति के निवास-स्थान तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों का निर्धारण होता है। यहाँ भू-स्वमित्व की प्रकृति भी जानी जाती है। विभाजन पर ही आधारित है। ग्रामीण क्षेत्र में अनेक कारणवश प्राय: प्रशासकीय कार्य भी जातीय आधार पर विभाजित होता है।

जाति-व्यवस्था प्राचीनकाल से ही भारतीय सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख आधार रही है। इस सन्दर्भ में जाति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'जात' से मानना अधिक उचित है। क्योंकि जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के 'जन्म' या जन्म के परिवार को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। जाति की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत की है। जाति की प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

मजूमदार तथा मदान-- "जाति एक बन्द वर्ग है।"

केतकर-- "जाति एक ऐसा समुदाय है और इसके सदस्य वही होते हैं जो इसमें जन्म लेते हैं वे सदस्य अपने सामाजिक नियमों के आधार पर अपने समुदाय के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।"

- **जाति पंचायत एवं प्रमुजाति :**

जाति पंचायत की उत्पत्ति इसीलिये हुई कि उसे जाति के सदस्यों के सामान्य 10178 हितों की सुरक्षा हो सके और उनके आपसी झगड़ों का निपटारा जाति में ही हो जाये। यही जाति वैदिक काल में कर्मों के अनुसार वर्ण का विभाजन हुआ और कार्यों की पवित्रता और अपवित्रता के साथ-साथ छुआछूत की भावना का जन्म हुआ और अछत जातियों ने अपने को हिन्दू सामाजिक संरचना का जातीय संरचना से अलग पाया।इसी समय इस अछूत जातियों में असुरक्षा की भावना का जन्म हुआ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अछूत जातियों ने अपनी जाति के सदस्यों की सुरक्षा तथा शक्ति पनपाने के लिये जाति पंचायत का निर्माण किया गया।

यह निम्न जातियों में जाति पंचायत के जन्म की पृष्ठभूमि है, पर उच्च जातियों में भी जाति पंचायत पायी जाती है। उच्च जातियों के विभिन्न वर्गों में जैसे-जैसे सामाजिक दूरी व सामाजिक प्रतियोगिता बढ़ती गयी, वैसे-वैसे अपनी जाति के हितों की रक्षा के लिये उच्च जातियों में पंचायत का जन्म हुआ। आज हम ब्राह्मण सभी, कायस्थ सभा, अग्रवाल सभा आदि अनेक जातीय संगठन देखते हैं। इनका भी उद्देश्य जातीय सुरक्षा को बनाये रखना एवं उनमें शक्ति उत्पन्न करना ही है।

- **प्रभु जाति :**

ग्रामीण भारत में सामाजिक स्तरीकरण का मुख्य आधार जाति प्रथा है। जहाँ विभिन्न जातियाँ जजमानी प्रथा द्वारा आर्थिक रूप से एक-दूसरे पर निर्भर रही है। निम्न और उच्च जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध भू-स्वामी और काश्तकार, मालिक और सेवक, साहूकार और ऋण लेने वाले आदि के रूप में भी पाये जाते हैं। जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों, ग्रामीण एकता या ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिये प्रभु जाति की अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक है।

- **ग्रामीण भारत में धर्म :**

भारत धर्म प्रधान देश है। भारत धार्मिक देश होते हुए भी परोपकारी और सहिष्णुतावादी है। 'विश्व बन्धुत्वः में उसकी अटूट आस्था है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर में आस्था रखता है जिससे सेवा-भाव उत्पन्न होता है। सभी ने सभी धर्मो को आश्रय दिया है, इसलिये भारत में एक नहीं अनेक धर्म हैं इसलिये यहाँ आस्तिक भी हैं और नास्तिक भी। सभी अपने-अपने धर्म का पालन करने में स्वतंत्र हैं। भारतीय धर्म निरन्तर बहने वाली एक नदी के समान है जो समय के साथ-साथ अनेक प्रकार के ज्ञान और अनुभव को अपने साथ समेटती चलती है। धर्म समाज में जहाँ नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है वहीं व्यक्ति के चरित्र का निर्माण भी करता है तथा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

शाब्दिक दृष्टिकोण से धर्म शब्द 'धृ से बना है और इसका अर्थ है वह जो किसी वस्तु को धारण करे या उस वस्तु का अस्तित्व रखे। धर्मशास्त्र में स्पष्टतः लिखा है कि- "धारणइर्ममिप्याहु धर्मों धारयति प्रजा।" अर्थात् धारण करने वाले को धर्म कहते हैं।

मैलिनोवस्की- "धर्म क्रिया का एक ढंग है, साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था है और समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

एडवर्ड टायलर- "धर्म का अभिप्राय आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है।"

- **ग्रामीण भारत में आवास तथा अवस्थापना :**

परम्परागत ग्रामीण समाज के सम्बन्ध स्थानीयता से बंधे होते हैं। गांव के निवासी स्थानीय आधार पर अपने सभी कार्यों को निपटाते थे। उनकी आवश्यकतायें भी

- **भूमि सम्बन्धी विधान तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना**

भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना की प्रकृति को समझने के लिये गाँवों के आन्तरिक सम्बन्धों, समूहों, गाँवों को समुदायों में समुदाय के रूप में समझना होगा तथा ग्रामों की सामाजिक संरचना की स्थायी इकाइयों का अध्ययन करना होगा। प्रत्येक गाँव को सम्पूर्ण भारतीय समुदाय के सन्दर्भ में भी देखा जाना चाहिये। क्योंकि एक गाँव अपनी अनेक स्थानीय आवश्यकताओं जैसे- धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि की पूर्ति ग्राम स्तर पर पूरी करता है, वही वह अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सम्पूर्ण भारत पर भी निर्भर है।

डॉ० दुबे का विचार है कि प्रत्येक भारतीय गाँव का एक इतिहास होता है, मूल्यों और विचारों की एक व्यवस्था होती है। अतः प्रत्येक गाँव को अन्तःग्रामीण संगठन के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिये। कहते हैं कि भारतीय ग्रामीण संरचना को समझने के लिये लघु स्तर पर अनेक हिस्सों में गाँव का अध्ययन करके हम गाँवों के विभिन्न पक्षों एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्तकर सकते हैं।

- **ग्रामीण सामाजिक संगठन :**

राबर्ड रेडफील्ड ने भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना का उल्लेख करने के लिये परिवार नातेदारी, धर्म, जाति, शिक्षा, सत्ता एवं अर्थव्यवस्था आदि आधारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। डॉ०0 दुबे ने इनके अतिरिक्त मूल्य-व्यवस्था को भी भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिये आवश्यक माना है। अन्य विद्वानों ने इन्हीं आधारों में अल्प संशोधन को करते हुए स्वीकार किया है। डॉ० दुबे का विचार है कि गाँव की सामाजिक संरचना का अध्ययन करने के लिये एक गांव को विभिन्न प्रतिमानों में इस मजदूरी करते हैं या दूसरों की भूमि को ठेके पर लेकर खेती करते हैं। या बटाई पर. खेती करते हैं। खेतिहर मजदूर, सीमान्त किसान एवं छोटे किसान मिलकर कुल ग्रामीण परिवारों के 72.2 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं, ये सभी ग्रामीण लोग गरीब हैं।

सन 1961 में देश में 3.15 करोड़ खेतिहर मजदूर एवं 9.95 करोड़ किसान थे। 1971 की जनगणना के अनुसार देश में खेतिहर मजदूरों की संख्या 4.75 करोड़ थी। 1981 की जनगणना के अनुसार देश में 5.6 करोड़ खेतिहर मजदूर थे। 1991 की जनगणना के अनुसार देश में 7.8 करोड़ खेतिहर मजदूर थे जबकि वर्तमान में इनकी संख्या बढ़कर 10.6 करोड़ हो गई है। 1990-91 में देश में कुल जोतों का 59 प्रतिशत सीमान्त किसान 19 प्रतिशत लघु किसान, 13.2 प्रतिशत, अर्हमध्यम किसान, 7.2 प्रतिशत मध्यम एवं 1.6

प्रतिशत बड़े किसान थे। इस प्रकार खेतिहर मजदूर जिनमें भूमिहीन भी सम्मिलित है, सीमान्त किसान एवं छोटे किसान मिलकर ग्रामीण कमजोर वर्ग का निर्माण करते हैं। ग्रामीण वर्ग व्यवस्था में सबसे निम्न स्थान खेतिहर एवं कृषि मजदूरों का है और गाँवों में इनकी संख्या ही सर्वाधिक है। ये लोग दूसरे के खेती पर मजदूरी करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

निष्कर्ष

जिस समुदाय की अधिकांशतः अवयश्कताओं की पूर्ति कृषि या पशुपालन से हो जाती है उसे ग्रामीण समाज समुदाय के नाम से जाना जाता है। नगर की अपेक्षा गाँव में जनसंख्या का धनत्व बहुत ही कम होता है। गाँव में घनी जनसंख्या न होने के कारण कृषक का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से होता है। जिस समुदाय की अधिकांशतः अवयश्कताओं की पूर्ति कृषि या पशुपालन से हो जाती है उसे ग्रामीण समाज समुदाय के नाम से जाना जाता है।

नगर की अपेक्षा गाँव में जनसंख्या का धनत्व बहुत ही कम होता है। गाँव में घनी जनसंख्या न होने के कारण कृषक का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से होता है। ग्रामीण समाज में महानगरीय सभ्यता और बनावटी भौतिक संस्कृति का जाल नहीं बिछा होता। ग्रामीण समाज सरल साधा जीवन व्यत्ती करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://www.samajkaryshiksha.com/2021/09/characteristics-of-rural-society.html
2. https://www.kailasheducation.com/2021/07/gramin-samaj-arth-paribhasha-visheshta.html#:~:text
3. https://ncert.nic.in/textbook/pdf/lhsy204.pdf
4. http://www.ijcms2015.co/file/vol-ii-issue-2/AIJRA-VOL-II-ISSUE-2-43.pdf
5. https://www.egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/30713/1/Unit-3.pdf
6. http://www.ijcms2015.co/file/vol-ii-issue-2/AIJRA-VOL-II-ISSUE-2-43.pdf